अथातो शोध जिज्ञासा

प्रवीण कुमार पाण्डेय*

लिखने को क्या? कुछ भी लिखा जा सकता है, और छपने को क्या? कुछ भी छपवाया जा सकता है। अपने दौर के कुछ एक ऐसी सोच से व्यथित होकर मैं शोध पत्रों के लेखन पर ही लिखने को स्व–प्रेरित हुआ।

तुम कहते कागद की लेखी। मैं कहता आंखिन की देखी।

जब मैं शोध पत्र लेखन की मौलिकता व मुक्त अभिव्यक्ति वाली बात करता हूं तो इस दोहे से बड़ा बल मिलता है क्योंकि मैं लेखन में जो हो रहा है उसको अपने अनुभव से प्रकट करना चाहता हूं और बाध्यता मुझे बार–बार एक पूर्व स्थापित आवश्यक दायरे में बांधे रखना चाहती है। यह आवश्यक बंधन मुझे स्वीकार्य है बस निवेदन है कि यह बंधन मेरी व्यक्तिगतता को भी अवसर दे।

मैंने देखा और पाया हम शोध–पत्रों के लिए Research Methodology से बहुत कुछ सीख जान सकते हैं, या पुस्तकों, Internet आदि से भी। पर ध्यान रहे यह जानने–समझने के लिए तो उपयोगी है पर नकल के लिए नहीं।

शोध पत्र हेतु आप अपने सम्बन्धित विषय–वस्तु पर खोजते हैं कि क्या, कैसे, कब,–कब हुआ और आज यह प्रासंगिक कितना है, इस तरह की खोज और चिंतन से पता चला कि कला और मानविकी वर्ग में जो कुछ कहा जा रहा है उसमें प्रयोग, आंकड़ों आदि से अधिक महत्वपूर्ण स्थान 'विचार' का है। विचारों में जो व्यक्त हो रहा है उनकी पुष्टि हेतु एक से एक पुरानी रहस्यमयी बातें और आंकड़े। बातें भी जितनी पुरानी–जटिल और गूढ़ उतना ही उनका महत्व। लेकिन आजकल तो ऐसे मुद्दों पर F book, twitter, समाचार पत्रों, लेखकों, राजनेता, अभिनेता, चाय की दुकान पर चर्चा कर रहे सामान्य नागरिकों और विद्वानों से लेकर हर कोई चर्चा और शोध प्रस्तुत कर रहा है। कोई मौखिक कोई लिखित तो कोई–कोई सांकेतिक। तो यहां एक प्रश्न उठता है कि हमने कला एवं मानविकी में इससे इतर विशिष्ट व ग्रहणीय क्या नया प्रस्तुत किया जो कुछ अद्भुत और विशेष माना जाए?

फिर आप विज्ञान की विशिष्ट खोज जैसा भी कुछ नहीं कर रहे कि जैसे अभी मंगलयान (Mom) मंगल ग्रह की कक्षा में पहुंचा तो हमने लिख डाला या विचार दिया कि इसका प्रोपेलेण्ट यह रखो, इंजन इस सिद्धात से चलाओ तो ज्यादा सफलता मिले या कवच इस धातु का करो, डिजाइन, टाइमिंग ऐसी रखो। कुछ भी तो नहीं।

कौन सा आपका मंहगाई पर दिया लेख 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' ने मंगवाया और समस्त विश्व की अर्थव्यवस्था पर उससे गहरा प्रभाव पड़ा या सुधार हो गया? इस प्रकार तो हर कोई दो जून की रोटी, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, बिजली, पानी, सड़क के लिए व्यथित है और हर कोई कुछ न कुछ कह रहा है। बस ज्ञान, समझ और अभिव्यक्ति में थोड़ा अन्तर है पर इतना नहीं कि आप में गर्व आ जाए और अन्य को आप नासमझ समझने लगें।

पुनश्च हम इंजीनियर भी नहीं जो नई चिप, नए साफ्टवेयर नए यंत्र–तंत्र दे रहें हों और न ही हम डॉक्टर हैं जो नए रोग उनके कारण–निवारण, नए जीन आदि के बारे में खोज रहे हों या बहुत कुछ जो हम नहीं है वह बनने–दिखाने का प्रयास कर रहे हों। हम हैं विचारक, शिक्षक, शोधार्थी वह भी कला–मानविकी वर्ग के। अब हम जिन–जिन मुद्दों या विषयों पर कुछ देते हैं उन मुद्दों पर

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं प्रभारी, दर्शनशास्त्र विभाग, किसान पी0जी0 कालेज, बहराइच

कहने–लिखने वाले दिन भर शब्दों का हथियार और विचारों का बाजार लिए व्यापार गर्म कर रहे हैं। तो विचार करना है कि हमारा–हमारे लिए विशेष बचा क्या?

फिर जब हम कहेंगे हमारे लेख मात्र लेखन या बकबक नहीं हैं अपितु खोज हैं, उत्कृष्ट विचार हैं, शोध हैं। इसमें पैमाने मानक, मापदण्ड, प्रक्रम आदि हैं। यह श्रेष्ठ है। तो आपकी श्रेष्ठता व जिद पर मैं भी सांत्वना रखकर सहमति तो जता दूंगा पर अगले क्षण कह उठूंगा कि 'output' नामक शब्द पर विचार करिए तथा सोच के जंजाल में मंथन करने पर बाहर क्या आया यह बताइए? जो उत्पाद बाहर आया वह क्या है कितना नया और कैसा है? कितना विशेष और ग्रहणीय है सोचना–देखना तो यही है। क्योंकि पद्धति, प्रक्रम या स्थान के भेद से उसको निर्धारित नहीं करना है। एक विद्यार्थी शोधार्थी के रुप में आप किस श्रेणी का 'उत्पाद' प्रकट कर रहे हैं विचारणीय तो यही है।

हमने शिक्षा पर कुछ लिखा तो घर–परिवार में अभिभावक परेशान कि अब तो वह शिक्षा, शिक्षक, व्यवस्था और संस्थान ही वैसे नहीं रहे। अब तो सब व्यापार हो गया है। ऐसी ही तमाम आलोचनाएं। तात्पर्य यह है कि जितना हम शिक्षाशास्त्री बनने या होने वाली सोच के माध्यम से कुछ कहते है उतना तो लोग चिंता और चिंतन में कह डालते हैं। हम शिक्षा में सुविधा, सहजता और सुधार सम्बन्धित आधुनिक बात रखते हैं तो तुरन्त ही उनके समानान्तर तर्क आते हैं 'कि' अरे जिसको पढ़ना होगा वह हर हाल में पढ़ लेगा, ऋषि–मुनि, ज्ञानी जंगल में रहकर वेद–उपनिषद रच डाले, खिचड़ी खाकर लोग IAS, PCS बन गए और बन रहे हैं।

कहने का तात्पर्य आप किसी क्षेत्र में विचार रखिए बस। उस पर प्रतिक्रिया, आलोचना व समर्थन आदि तुरन्त पेश। लेकिन यह सब सोच कर हमें शांत नही बैठना है तथा यह भी नहीं सोचना है कि यह सब तो हर जगह उपलब्ध है। इस तरह की सोच निश्चित रुप से शिथिलता, निष्क्रियता होगी। हमें हर बिन्दु पर दृष्टिपात करना है। नए–2 आयामों पर युक्ति–युक्त तरीकों से मंथन कर एक व्यवस्थित सिद्धान्त प्रतिपादित करना है।

तो क्या कला एवम् मानविकी वर्ग के लेख निरा–निपट किसी पूर्व के विचारों की पुनरावृत्ति मात्र है अथवा वर्तमान परिवेश के विभिन्न आयामों पर हमारी सोच का विभिन्न उदाहरणों, सन्दर्भों सहित नया वैयक्तिक व व्यक्तिगत प्रकट स्वरुप हैं? समझना होगा। न भी समझ पाएं तो समझने और समझाने का नाटक करना होगा। यही समय की मांग है। जैसे–अर्थशास्त्र पर लिखिए और अमर्त्यसेन जी का, स्त्री–विमर्श पर लिखिए तो विभिन्न कालों की स्त्री लेखिकाओं आदि का नाम न डालिए तो सब सूना। तात्पर्य यह है कि विषय विशेष से सम्बन्धित शोधों कार्यो की अवगति रखी जाए, उसका अध्ययन कर उल्लेख किया जाए। कम से कम किसी बहाने से ही सही शोध किया तो जाए।

प्रचलन में हम जानते है कि हर कोई दार्शनिक है। सबका अपना जीवन दर्शन है और जीवन में जीवन से ज्यादा व बाहर कुछ नहीं है। अतएव दार्शनिक प्रयास जरुरी है। दार्शनिक का कार्य है दृष्टि निर्माण और दर्शन हमें दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। हमारे अध्ययन का क्षेत्र समग्र संसार/ब्रह्माण्ड हैं और थोड़ी पारमार्थिकता या कवि की भांति काल्पनिकता का सहारा लेकर महान ग्रन्थ, बड़ी–2 पोथी हांक दो कौन रोकता है ? यहां मनवाने के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है वैसे ही न मानने वालों के पास भी तो मात्र उनकी नकारात्मक जिद के अलावा 'न' सिद्ध करने के भी सर्वमान्य प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं। अतः आप के 'परमसत्य' भी उसी तरह दौड़ पड़ते हैं जैसे बाढ़ में पूरे वेग जोर से उमड़ पड़ी नदी। मतलब?..... सामने पड़ने या रोकने–थामने वाले को ही बह जाना है। यह व्यावहारिक विचार धारा है।

एक बात और हम अपनी उम्र, ज्ञान, समझ और अनुभव से अधिक कुछ नहीं बता पाते हैं। और सही भी यही है कि उससे अधिक या आगे कुछ बताना–कहना लाज़मी भी नहीं। पर मैं यहां कह सकता हूं कला–मानविकी वर्ग के शोध–पत्रों में कुछ Innovative देना एक सुखद चुनौती होता जा रहा है।

यद्यपि बहुत कार्य है जो आदर्श रुप में जैसे होने चाहिए वैसे नही हो पाते क्योंकि सिद्धान्त/ आदर्श को व्यवहार में उतारना किस–किस तरह कठिन है हम सबको विदित है। तथापि कैसे भी 'आदर्श' की ओर निरन्तर अग्रसर रहना हमारा दायित्व है।

इसलिए यह ध्यान रहे कि विचार ही विश्व के व्यापार हैं। विचारों का प्रवाह होते रहना चाहिए। थोड़ा कचरा या मल तो गंगा जी के साथ भी बह रहा है। पर क्या हम उसे पूजना, मानना और मृतक के मुंह में मुक्ति के लिए दो बूंद टपकाना छोड़ देते हैं? नहीं ना। अतः लिखें। हां लिखे और मानक आदि का ध्यान रखें व पालन करें। पर मानक के कारण अभिव्यक्ति न रोकें। डरे नहीं। क्योंकि मानक का कोई मानक निश्चित नहीं। देश, काल, स्थिति–परिस्थिति अनुरुप मानकों का परिवर्तन एवं निर्माण होता रहता है। पर यह पूरी अवगति के साथ ध्यान रहे कि किस हेतु लिख रहा हूं? लिखने का तात्पर्य, प्रासंगिकता व उपयोगिता आपके लेखन के उद्देश्य में समाहित होने चाहिए।

बहुत सारे लेख, tips आदि मिले, निर्देशन, तरीके मिले। पर जैसा मैने कहा कि 'कैसे' से ज्यादा महत्वपूर्ण है 'क्या' लिखा जाए जो मौलिक हो? लेकिन यहां इस तरह के लेख का उल्लेख या उनके मीन–मेख का आलेख बनाना मेरा उद्देश्य नहीं है। और न ही लेखों, तरीकों पर दर्जा 12 के हिन्दी प्रश्न पत्र की भांति प्रसंग, सन्दर्भ, व्याख्या, आलोचना और निष्कर्ष जोड़कर कुछ तैयार करना। मेरे लिए नया मौलिक यही हो सका मैंने किया। आगे निरन्तर मेरी चुनौती मेरे लिए ही होगी कि 'कला तथा मानविकी के शोध–पत्रों में क्या नवीन, मौलिक व उपयोगी है? इसे जाना, खोजा व नए कलेवर में प्रस्तुत किया जाए।

शोध–पत्र हेतु किसी topic पर सोचना, उस पर हुए अध्ययन खोजना, अपनी समझ से उसका पूर्णता एवं पुष्टि के लिए सन्दर्भो को ग्रहण करके व्यक्त करना उपयुक्त है। **जैसे –**

स्त्री–विमर्श पर –ऋग्वेद के अनुसार 'पत्नी ही घर है।'[1]

ग्रामीण धर्म पर –'प्रचलित समाजशास्त्रीय मान्यता है कि नगर के निवासियों की अपेक्षा ग्रामीणों में धर्म के प्रति झुकाव अधिक है।'[2]

दाम्पत्य–जीवन और विवशता पर –

'जिन्दगी का सफर कैदखना बना/भाग कर आ गए/हम जहां, उस जगह/तड़फड़ाना मना/छटपटाना मना/सोचना और आँसू/बहाना मना।'[3]

दलित स्थिति एवं आन्दोलन पर –

'परम्परागत समाज में दलित अपने कार्यानुसार 2 वर्ग में विभक्त थे। एक वे जो जजमानी व्यवस्था के तहत प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से केवल अपने जजमानों की परम्परागत सेवा करते थे। दूसरे जो भू–स्वामी के यहां खेती का काम भी बहुत कुछ वंशानुगत रुप से करते थे।[4]

पर्यावरण संरक्षण पर –

'आज वृक्ष को वस्तु समझकर उसकी हत्या करने वाले भोगवादी चिन्तन के स्थान पर ''वन हैं हमारे जीवन प्राण'' वाले भारतीय संस्कृति के सन्देश को आत्मसात करना होगा।[5]

या न्याय पर –

''प्राणि मात्र को उसके लिए निश्चित–निर्धारित एवं अर्जित उसकी प्राकृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं संवैधानिक योग्यता तथा आवश्यकतानुसार स्वीकृत व संरक्षित अधिकारों का तदरुप वितरण न्याय है।''[6]

–प्रवीण कुमार पाण्डेय

इसी भांति बहुत सारे विषयों के निहितार्थों, उद्देश्य एवं क्रिया–कलापों पर इस बात का ध्यान रखकर अध्ययन–विश्लेषण कर विचार रखना श्रेयस्कर है कि वह उत्तरोत्तर व्यापक और वृहत्तर स्तर पर ग्राह्य सिद्ध हो सकें।

अन्ततोगत्वा हम द्रष्टा विचारों के सृष्टा हैं। विचार ही सब कुछ है। विचार जारी रखें क्योंकि द्रष्टा के दार्शनिक दृष्टिकोण से जो दृष्टि निर्मित होती है वही सृष्टि को देखने, जानने व समझने का आयाम और आधार बन जाती है।

सन्दर्भ सूची :-

1. पाणिनी शिक्षा–52, विद्यालंकार परिवार मीमांसा
2. देसाई, (A.R. 2006); भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, पृष्ठ–167
3. सिंह डॉ0 शम्भूनाथ, वक्त की मीनार, पृष्ठ–13
4. सिंह राम गोपाल, भारतीय दलित समस्याएं एवं समाधान, पृष्ठ– 63–64
5. बहुगुणा सुन्दरलाल, 'हमारे वन है जीवन प्राण, पृष्ठ–56
6. पाण्डेय प्रवीण कुमार, स्वनिर्मित परिभाषा